बातचीत

लोक जीवन और वेद

(वार्ताकार– डा. राधावल्लभ त्रिपाठी, पं प्रभुदयाल मिश्र और डा. भास्कराचार्य त्रिपाठी)

प्रभुदयाल मिश्र– इन दिनों वेदों पर लोग अक्सर बात करते हैं । सभा और बैठकों में इनके संदर्भ देते हैं लेकिन प्रायः इनके मूल तक नहीं पहुंच पाते । बात ऊपरी ही रह जाती है । किन्तु यह निर्विवादित है कि वेद हमारे सर्वस्व हैं । वैदिक ज्ञान ने ही हमें वर्तमान स्वरूप दिया है । हमारी संस्कृति और हमारे समाज का आज जो आकार है, वह वेद विनिर्मित है ।

यह बहुत बड़ी प्रसन्नता की बात है कि हमारे बीच में डॉ राधा वल्लभ जी त्रिपाठी जो डा. हरिसिंह विश्वविद्यालय सागर में संस्कृत विभागाध्यक्ष हैं, उपस्थित हैं और श्री भास्कराचार्य जी त्रिपाठी, जो मध्य प्रदेश संस्कृत अकादमी के पूर्व सचिव है, विद्यमान हैं । और मैं, प्रभुदयाल मिश्र, इस अभिप्राय से यहां भोपाल से आया हुआ हूं कि इन विद्वानों से चर्चा करूं । इस विषय पर जो वर्तमान में चिन्तन की धारा चल रही है, कुछ उसका समाहार करूं। हमारे इस विषय के चर्चाकारों में प्रथम अधिकारी विद्ववान श्री राधा वल्लभ जी त्रिपाठी है जिन्होंने 106 पुस्तकें लिखी है। और दूसरे हैं श्री भास्कराचार्य जी त्रिपाठी, म.प्र. सेस्कुत अकादेमी के पूर्व सचिव । अन्तराष्ट्रीय ख्याति के इन प्रतिभावान लोगों की उपस्थिति का लाभ लेते हुए मैं लोक जीवन से जुड़े हुए डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी जी को प्रथमतः संबोधित करता हूं। हिन्दी और संस्कृत के काव्य, समालोचना, कहानी, कविता, उपन्यास सभी क्षेत्रों में आपने भरपूर लिखा है। उनकी हाल ही में एक पुस्तक आई है 'अथर्ववेद वेद का काव्य'। इस पुस्तक को विद्यालय विश्व प्रकाशन वाराणसी ने प्रकाशित किया है। संयोग से अथर्वेद चौथा, ऐसा वेद है जो तत्कालीन भारतीय समाज का प्रतिनिधित्व करता है। तत्समय हमारा लोक जीवन कैसा रहा होगा ? और उसकी वह शाश्वत अंतर्धारा जो आज हमारे बीच मौजूद है, क्या है, विचार योग्य है। कुछ दिन पहले डॉ प्रभुदयालु जी अग्निहोत्री से मेरी भोपाल में बात हो रही थी । उन्होंने अथर्ववेद का एक वृहत्तर भाष्य किया है। यह भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली से प्रकाशित होकर आ रहा है। जैसा कि उन्होंने 'पतन्जलि कालीन भारत' एक

ऐतिहासिक महत्व की पुस्तक लिखी है, लगभग उसी रूप में अथर्ववेद पर भी यह पुस्तक उन्होंने तत्कालीन भारतीय समाज को पूरी प्रमाणितकता से अभिचित्रित करने के लिये लिखी है। श्री राधावल्लभ त्रिपाठी की 'अथर्ववेद का काव्य' पुस्तक पढ़ते हुए हमारे मन में एक प्रश्न आया था । अथर्ववेद के पहले तो ऋग्वेद की भी अपनी कविता है । और ऋग्वेद वेद की पहली कविता है। जो पहली कविता होती है उसमें अधिक स्वभाविकता, अधिक इन्ट्यूशन अधिक इन्सपिरेशन की अवस्थिति होती है। ऋग्वेद का ऋषि प्रार्थना के स्तर पर काम करता है। वह देवता और प्रकृति को निकट से देखता है। उसके अपने कष्ट हैं, अपनी चिन्तायें है, अपनी परेशानियॉ हैं। उन सबको वह कविता के माध्यम से व्यक्त करना चाहता है । इस तरह उसका काव्य तत्व शायद अधिक प्रगाढ़ है। लेकिन आपने 'अथर्ववेद का काव्य' लिखा है तो हमें लगा कि यह बात आपसे पूछी जानी चाहिये कि अथर्ववेद के काव्य में क्या वह कविता के तत्वों को उतनी ही प्रमाणिकता से प्राप्त करते हैं? क्या वे उसमें मूल कविता के उन्ही तत्वों का साक्षात्कार करते हैं ? और यह अगर वेदों के काव्य पक्ष को हम समग्रता से देखना चाहे तो अथर्ववेद की कविता का स्थान क्या है?

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी – मिश्र जी मैं आपका आभारी हूॅ । आपने बहुत महत्वपूर्ण विषय का सूत्रपात किया। आपने इस विषय पर जो बिन्दु उठाये हैं उन पर मैं पहले कुछ अपनी प्रतिक्रिया स्वरूप कहूंगा फिर कुछ बातें वेद और अथर्ववेद के संबंध में कहूंगा । और लोक जीवन में जो उसकी संक्रान्ति है उसके संबंध में विचार व्यक्त करूंगा। एक बात तो यह है कि जो चार वेद संहिताये हैं उनमें कौन प्राचीन है, कौन अर्वाचीन है, यह एक जटिल प्रश्न है । इसकी बहुत प्रासंगिकता हमारे लिये नहीं है। यह तो एक ऐसी शास्वत ज्ञान–धारा है जो जनजीवन से उद्भूत हुई और जनजीवन में प्रतिबिंबित हुई । आधुनिक विद्वान कहते हैं कि अथर्ववेद में ऐसे बहुत सारे सूक्त हो सकते हैं जो प्राचीनतम होंगे । तो संपूर्ण वेद ज्ञान की एक ऐसी दिव्य अलौकिक राशि हैं जो भारत की अमूल्य धरोहर और विश्व संस्कृति को भारत की अनमोल देन है। हम देखते हैं कि हमारा कई सहस्राव्दियों का जो इतिहास है उसमें बार–बार हर सहस्राव्दी में कहीं न कहीं से कोई आवाज आई है कि वेद की तरफ देखो। ईसा की एक सहस्राव्दी पूर्व से अगर आप देखें तो

साहित्यिक प्रमाण मिलता है कि यास्क निरुक्त लिख रहे हैं क्योंकि वेद के काव्यों का अर्थ लोग भूल रहे हैं। ईसा के 1000 साल से पहले ही इस तरह यह जद्दोजहद शुरू हुई है कि कहीं ऐसा न हो कि पुरोहित विवाह करा दें, मंत्र पढ़ दे और यह जान न पायें कि इसका अर्थ क्या है। इससे तो हमारी आत्मा ही हमसे चली जायेगी और हमारे पास खोखला ढॉचा रह जायेगा । वेदों के मंत्रों के कई स्तरों पर अर्थ हुआ करते हैं। इनका एक ऐतिहासिक अर्थ है, इनका एक देवता पक्ष में अर्थ है तथा इनका एक आख्यान पक्ष में अर्थ है। वस्तुतः वेद में अनंत व्याख्यायों की संभावनायें छिपी हुई हैं ।

महाकवि कालिदास अपने प्रसिद्ध नाटक 'विक्रमोर्वशीयम्' में जो लिख रहे हैं वह पूरा का पूरा ऋग्वेद का उर्वशी पुरूरवा सूक्त है। यह जो 2000 साल की नाटक की अत्यन्त तटस्थ संस्कृत साहित्य –परंपरा है उसमें कहीं न कहीं वेद की अन्तर्धारा है। फिर आप देखते हैं चौदहवीं शताब्दी में युग पुरुष सायण हुए । उन्होंने चारों वेदों पर भाष्य लिखा। अथर्ववेद पर भी उन्होंने भाष्य लिखा। उन्होंने यह कहा कि अथर्ववेद तो चारों वेदों में सर्वश्रेष्ठ है । 13वीं और 14–15 वीं शताब्दी में हमारी संस्कृति जो विजय नगर एम्पायर बनाती है वह भारतीय संस्कृति की नये सिरे से पहचान कराती है। सायण और महीधर हमारे इतिहास के इसी जाज्ल्यमान पक्ष के साक्षी है। हमारी जो दार्शनिक चिंतन की धाराये हैं और जो वेद की परम्परा है इनसे उनकी ही पहचान हो रही है। उन्नीसवी, बीसवी शताब्दी में तो हम देखते है कि एक पूरी की पूरी नक्षत्र पंक्ति है। मैं समझता हूं जितने युग पुरुष, जितने ऋषि उन्नीसवी, बीसवी शताब्दी में इस देश की धरती पर हुए, उतने कभी किसी समय में नहीं हुए होंगे । इसमें ऋषि दयानंद, रवींद्र नाथ टेगौर, महर्षि अरविंद, सातवलेकर आदि सभी वेद से अनुप्राणित हैं। लोकमान्य तिलक ने तो एक ऐसा अद्भुत अनुसंधान कार्य किया है जिसकी हम किसी से तुलना ही नही कर सकते। वेद तो धरती के इतिहास की सबसे प्राचीन पुस्तक है। वेद को हर हालत में हमें संजोकर रखना है।

प्रभुदयाल मिश्र–यह सब सुनकर बहुत ठीक लगा। खासकर आपने 19 वीं सदी का नाम लिया । मैं सोच रहा था 21 वी सदी में भी आज इस दिशा में जो काम हो रहा है, आगे की

पीढ़ी को उसका भी नाम लेने का अवसर होना चाहिये। अब मूल प्रश्न वही है कि आज हमारे जीवन के वे कौन से पक्ष हैं, चाहे वे सामाजिक जीवन के हों, पारिवारिक जीवन के हों, राजनीतिक जीवन के हों, या चाहे भारतीय मनीषा के हों, जिन्होंने वेदों को आत्मसात किया है। आपने जो अथर्ववेद की बात कहीं तो इस तरह साफ हुआ कि अर्थर्ववेद वेदों की प्रतिनिधि रचना है। अतः मोटे तौर पर हम यही विचार करें कि वह कौन सा पक्ष है जो आज वेदों से संक्रान्त है। इसमें प्रवेश के पहले हमें श्री भास्कराचार्य जी त्रिपाठी का भी मत जान लेना है। हमारा सौभाग्य है कि वे हमारे बीच में मौजूद हैं। श्री त्रिपाठी जी राजधानी भोपाल में संस्कृत वाड्.मय के प्रतिनिधि और प्रामाणिक हस्ताक्षर हैं । जब भी विद्वानों को किसी विषय पर अन्तिम निर्णायक की आवश्यकता होती है तो आप ही के पास जाते हैं। हम चाहते हैं कि इस विषय पर आपका परिमार्जन हो ।

भास्कराचार्य त्रिपाठी – मिश्र जी और डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी जी, मैं तो अपने को धन्य पाता हूं कि इतने बड़े–बड़े हस्ताक्षरों के बीच मुझे बोलने का अवसर मिल रहा है। अपने यहॉ आस्तिक उसी को कहते हैं जो कि वेद की मान्यता करता है। ओर जो उन्हें नहीं मानता है, वह नास्तिक है। गोस्वामी तुलसीदास ने तो हाथ उठा कर ही कह दिया। 'अतुलित महिमा वेद की तुलसी कियो विचार, जेहि निंदित निंदित भयो विदित बुद्ध अवतार ।' ''वेद पढ़े जनु वटु समुदाई'' यह मंडूक सूक्त का सीधे सीधे रूपान्तरण है। प्रकृति और लोक के दृश्य में तदाकार वेद का ऋषि कहता है ''मंडूक और नजदीक आकर बोलो । वर्षा को बुला लो और बीच जल राशि मे तैरो । कैसे तैरो ? चारों पॉव ढीले कर दो और तैरो ।' यह अप्रतिम लोक चित्र है। एक दूसरा चित्रांकन लें । जो इधर–उधर से पैसा बटोर कर समाज में घूसखोरी, बदमाशी के नाम पर वातावरण विकृत कर रहे हैं , उनके लिये कहा गया है – 'हिरण्यमयेनपात्रेण सत्यस्यापिहतम् मुखं' । गोल्डन ढक्कन से, स्वर्णिम आवरण से सत्य का मुख आज बंद किया जा रहा है । अपने–अपने दल, अपने–अपने वर्ग ऐसा विकृत तांडव कर रहे हैं, इसके लिये ऋषि प्रार्थना कर रहा है – इस ढक्कन को हटा दो जिससे हमारी दृष्टि पक्षपात रहित हो सके । मैं समझता हूं कि आज हम 21 वी शताब्दी के

उन्मीलन में यदि 'अथर्ववेद का काव्य' और 'वेद की कविता' जैसी महत्वपूर्ण कृतियों पर विचार कर रहे है तो भारत वर्ष के ऑगन में बैठकर ऋषियों का ऋण उतारने में ही लगे हैं ।

प्रभुदयाल मिश्र–त्रिपाठी जी आपने बहुत अच्छे संदर्भ दिये । एक सूक्त जो मुझे याद आ रहा है और लगता है इस चर्चा में बहुत प्रसांगिक है, वह 'सूर्या विवाह' का है। सूर्या विवाह ऋग्वेद ओर अथर्ववेद दोनों में है । आज भी विवाह की जो पद्धति है, जो परम्परा है वह सीधे सूर्या विवाह से आती हैं । विवाह का जो कर्मकांड है उसमें सूर्या विवाह के सूक्त के संदर्भों का समाबेश है। इसमें जैसे स्वयंवर की बात आती है। सूर्य की पुत्री है सूर्या और सूर्य ने उसके लिये स्यवंवर रचा। तो स्यवंवर में सब देवता आते हैं लेकिन सूर्या वरण करती है अश्विनी कुमारों का । सूर्या ने तो वरण कर लिया लेकिन और देवता अभी जमे हुए हैं। संभवतः वे आशा कर रहे हैं, प्रतीक्षा कर रहे हैं कि सूर्या शायद उनका संवरण कर ले। ऋषि कहता है–

'यहां से अब हटो सुर, विश्वावसो
सूर्या ने पति का वरण है कर लिया
संस्तुत्य तुम
सुकन्या दूसरी तुम देखो
तुम्हारा भाग जो़... '

इसके विम्बों की काव्यात्मकता भी अनूठी है। सूर्या के ऊपर आकाश की चादर तनी हुई है और वह मनोमय रथ में बैठकर जा रही है– ''ऋचा थी परिचारिका/ उसकी सखी /जब सूर्या परिणीत पतिगृह जा रही थी/ आभरण/ उसके मनोहर भव्य/ दिव्य गाथा प्रेम की तब कह रहे थे।

'चारुचित आभरण, अंजित नयन/ धन पृथ्वी गगन थे उसके/ उस समय जब सूर्या परिणीत पति के भवन/ प्रस्थान करने जा रही थी।'

पारिवारिक सौमनस्य के लिये ससुराल वालों का बहू को इससे बड़ा आशीर्वाद नहीं हो सकता– ''श्वसुर, सासू की बनो तुम स्वामिनी/ ननद, देवर सभी हों/तुम्हारे अनुगत।'

भास्कराचार्य जी आपसे इस विषय पर मैं प्रथमतः टिप्पणी चाहता हूं।

भास्कराचार्य– मिश्रजी, मैं तो इन सूक्तों के प्रतीकात्मक अर्थ करता हूं । सूर्य ऊर्जा है, ऊष्मा है । उसकी पुत्री सूर्या यौवन की देहली पर सवितु, गायत्री–सम्पन्न हुई है । उसने स्वास्थ्य के देवता का वरण किया है । उसका लोक–सौन्दर्य समाज में संप्रतिष्ठित हो रहा है ।

मैंने मिश्रजी आप और त्रिपाठी जी दोनों के द्वारा सूर्या विवाह के काव्यान्तरण का रसास्वादन किया है । मैं यह भी मानता हूं कि सूर्या विवाह हमारी विवाह की सबसे प्रौढ़ पद्धति का रेखांकन है । जिन आदि मंत्रों से राम और कृष्ण का विवाह सम्पन्न कराया गया होगा वे आज भी इस तरह अक्षुण्ण हैं । श्री राधावल्लभ जी इस संबंध में अपनी आधिकारिक टिप्पणियां अवश्य देना चाहेंगे ।

राधावल्लभ त्रिपाठी– वास्तव में सृष्टि के सभी पक्ष वेद में समाहित हैं । सृष्टि की प्रत्येक वस्तु के भी तीन पक्ष हैं– आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक । सूर्या विवाह को भी इन तीनों स्तरों पर जाकर हमें समझना होगा । सूर्या का विवाह अग्नि, गंधर्व और अश्विनीकुमारों से होने का यही रहस्य है । ये चेतना के त्रिविध स्तर हैं । इसमें दाम्पत्य जीवन की सफलता का सूत्र है । इसमें पति पत्नी के हाथ को अपने हाथ में लेकर कहता है कि 'तुझे देवताओं ने मुझे सौंपा है । तू सारा जीवन मेरे साथ व्यतीत कर ।'

इस सूक्त में भौतिक जीवन का सत्य भरा हुआ है । इसमें विवाह के नये विचारों की भरमार है । इसमें सीधे शब्दों में सीधी बाते कहीं गई हैं । आधुनिक लेखकों में भी इतनी निर्भीक स्पष्टवादिता नहीं दिखाई पडती क्योंकि हम आज कुंठाओं के आवरण में रहते हैं । वैदिक ऋषि जीवन के हर स्तर पर जीवन की सच्चाई को स्वीकार करता है ।

अथर्ववेद में आधुनिक समाज के आचार और विचारों का उन्मीलन है । इसमें तांत्रिक अनुष्ठान और टोने–टोटके के साथ एक जादुई दुनिया बसाई गई दिखाई देती है । इसके काम सूक्त में प्रेम की अनिर्वचनीयता है । इसमें प्रेमी अपनी प्रेमिका को प्रेम के पाश से विद्ध कर अपनी

और खीचता है । वास्तव में समाज के सर्वागीण – होलिस्टिक समाहार का उदाहरण अथर्वेद के अन्यत्र खोजा जाना कठिन है ।

प्रमुदयाल मिश्र – इस विचार गोष्टी के अन्तिम पड़ाव में एक और महत्वपूर्ण पक्ष पर बात करना चाहता हूँ । वह अथर्वेद का पृथ्वी सूक्त है । साहित्य, समाज, राष्ट्र तथा मानवता आदि कोई भी पक्ष इससे अछूता नहीं है । मुझे पृथ्वी सूक्त के अपने काव्यानुवाद में से निम्न पंक्तियॉ इस अवसर पर बरबस याद आती हैं –

गंध जो पृथिवी तुम्हारी
पुरुष में है/ और नारी में
परस्पर कान्ति, शोभा
अश्व,मृग,हाथी
सुकन्या आदि का वर्चस्
वह करे सुरभित हमें भी
द्वेष हमसे न करे कोई कहीं ।

इस सूक्त के विश्व मानवता और विश्व बंधुत्व का अद्भूत संदेश देता हुआ यह पैतालीसवां सूक्त भी मैं और उद्धृत करना चाहता हूँ –

विविध धर्मी
विविध भाषा
विविध भूतल–
मानवों का
एक तुम ही घर अटल
हो गाय कपिला
सरल सीधी
हमारे हित

सहस – धारा

दुग्ध – धन की

बनो पृथिवी

मैं चाहता हूँ कि इस सूक्त और इस वैदिक संदेश के संबंध में आपकी टिपण्णियां भी हमें प्राप्त हो ।

भास्कराचार्य त्रिपाठी – वैदिक ऋषि की घोषणा है –

माता भूमि पुत्रोऽहम प्रथिव्यः

विश्व मानवता का यह एक सिद्ध मंत्र है । आज के युग का क्षेत्रीयतावाद और वर्ग संघर्ष इस दिव्य संदेश में कोई स्थान नहीं रखता । पृथ्वी सूक्त का फलक इतना व्यापक है कि इसमें धरती आकाश ही नहीं मानवीय जीवन के सभी अध्यात्मिक, भौतिक और आधिदैविक पक्ष समाविष्ट हो गये हैं । निश्चित ही अथर्वेद की रत्नगर्भा पृथ्वी लोक जीवन को समृद्ध करती है ।

राधावल्लभ त्रिपाठी – विश्व के साहित्य में पृथ्वी सूक्त से बड़ी कोई कविता खोज पाना दुलर्भ है । अभी आपने जिस विश्व मानवतावाद के संदेश का उदाहरण दिया उस कांड 12 के सूक्त एक का पैतालिसवां मंत्र मुझे मूल रूप से स्मरण आ रहा है –

जनं विभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।

सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ।

इस सुक्त में वसुंधरा का दिव्य और तरल रूप दिखाई पड़ता है । यह जीवन की समग्र मार्मिकता और संपूर्ण कविता का परिचय देती है । वैदिक ऋषि कामना करता है कि वह पृथ्वी में जो बीज बोये वे जल्दी उग आयें किन्तु बीज बोने के लिये पृथ्वी को खोदते हुए वह उसके मर्म स्थल पर कोई आघात न पहुंचाये । इस तरह इसमें सृष्टि की सारी चेतना पिरोई गई है । वस्तुतः यह एक विश्व वोध है । यदि हम आज अपने देश के भू–भाग को भारत माता कहते हैं तो यह परंपरा पृथ्वी सूक्त से ही आई है । मैं थाईलेण्ड में रहा हूँ। मैंने वहॉ धरती की प्रतिमायें देखी हैं । मैं मानता हूँ कि यह परंपरा भारतीयों ने ही वहॉ पहुंचाई है ।

प्रभुदयाल मिश्र – 'लोक जीवन और वेद' इस विषय पर आज की इस ऐतिहासिक संगोष्ठी के लिये मैं आप दोनों मनीषियों का बहुत आभार मानता हूँ । मुझे विश्वास है कि हमारी यह वार्ता लोक जीवन में प्रसरित होकर वेदों के शाश्वत संदेश का संवहन करेगी । आपके अनुग्रहपूर्ण औदार्य के लिये मैं आपके प्रति आभार प्रकट करता हूँ ।

संयोजन–

(प्रभुदयाल मिश्र, ई एन 1/15 चार इमली भोपाल म.प्र.)